श्री पद्मानन्दसूरि रचित

श्रावक-विधि रास

म. विनयसागर

इस रचना के अनुसार 'श्रावक विधि रास' के प्रणेता श्री गुणाकरसूरि शिष्य पद्मानन्दसूरि हैं । इसकी रचना उन्होंने विक्रम संवत् १३७१ में की है। इस तथ्य के अतिरिक्त इनके सम्बन्ध में इस कृति में कुछ भी प्राप्त नहीं है और जिनरत्नकोष, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास और जैन गुर्जर कविओं में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है । अतएव यह निर्णय कर पाना असम्भव है कि ये कौन से गच्छ के थे और इनकी परम्परा क्या थी ?

शब्दावली को देखते हुए इस रास की भाषा पूर्णतः अपभ्रंश है प्रत्येक शब्द और क्रियापद अपभ्रंश से प्रभावित है । पद्य ८, २१, ३६, ४३ में प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा, तृतीय भाषा, चतुर्थ भाषा का उल्लेख है । **भाषा** शब्द अपभ्रंश भाषा का द्योतक है और पद्य के अन्त में **घात** शब्द दिया है जो वस्तुतः **'घत्ता'** है । अपभ्रंश प्रणाली में **घत्ता** ही लिखा जाता है । वास्तव यह **घत्ता वस्तुछन्द** का ही भेद है ।

इस रास में श्रावक के बारह व्रतों का निरूपण है । प्रारम्भ में श्रावक चार घड़ी रात रहने पर उठकर नवकार मन्त्र गिनता है, अपनी शय्या छोड़ता है और सीधा घर अथवा पोशाल में जाता है जहाँ सामायिक, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करता है । प्रत्याख्यान के साथ श्रावक के चौदह नियमों का चिन्तवन करता है । उसके पश्चात् साफ धोती पहनकर घर अथवा देवालय में जाता है और सुगन्धित वस्तुओं से मन्दिर को मघमघायमान करता है । अक्षत, फूल, दीपक, नैवेद्य चढ़ाता है अर्थात् अष्टप्रकारी पूजा करता है । भाव स्तवना करके दशविध श्रमण-धर्म-पालक सद्गुरु के पास जाता है । गुरुवन्दन करता है । धर्मोपदेश सुनता है, जीवदया का पालन करता है । झूठ नहीं बोलता है । कलंक नहीं लगाता है । दूसरे के धन का हरण नहीं करता है । अपनी पत्नी से सन्तोष धारण करता है और अन्य नारियों

को माँ-बहिन समझता है और परिग्रह परिमाण का धारण करता है । दान, शील, तप, भावना की देशना सुनता है और गुरुवन्दन कर घर आता है । वस्त्र को उतारकर अपने व्यापार वाणिज्य में लगता है । व्यापार करते हुए पन्द्रह कर्मादानों का निषेध करता है । प्रत्येक कर्मादान का विस्तृत वर्णन है । (पद्य १ से ३४)

व्यापार में जो लाभ होता है उसके चार हिस्से करने चाहिए । पहला हिस्सा सुरक्षित रखे, द्वितीय हिस्सा व्यापार में लगाये, तृतीय हिस्सा धर्म कार्य में लगाये और चौथा द्विपद, चतुष्पद के पोषण में लगाया जाए । (पद्य ३५)

द्वितीय व्रत के अतिचारों का उल्लेख करके देवद्रव्य, गुरुद्रव्य का भक्षण न करे । मुनिराजों को शुद्ध आहार प्रदान करे । इसके पश्चात् द्वितीय बार भगवान की पूजा करे । दीन-हीन इत्यादि की संभाल करे । मुनिराजों को अपने हाथ से गोचरी प्रदान करे । पौषधव्रत धारण करे । प्रत्याख्यान करे । सचित्त का त्याग करे । पिछले प्रहर में पुनः पौषधशाला जावे और वहाँ पढ़े, गुणे, विचार करे, श्रवण करे । सन्ध्याकालीन तृतीय पूजा करे । दिन के आठवें भाग में भोजन करे । दो घड़ी शेष रहते हुए दैवसिक प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करे और रात्रि के द्वितीय प्रहर के प्रारम्भ में नवकार गिनकर चतुर्विध शरण स्वीकार करता हुआ शयन करे । (पद्य ३६ से ४२)

निद्राधीन होने के पूर्व यह विचार करे कि शत्रुंजय और गिरनार तीर्थ पर तीर्थ की यात्रा के लिए जाऊँगा, वहाँ पूजा करूँगा, करवाऊँगा । साधर्मिक बन्धुओं का पोषण करूँगा । पुस्तक लिखवाऊँगा और अपना व्यापार पूर्ण कर अन्त में संयम ग्रहण करूँगा । वृद्ध और ग्लानों की सेवा करूँगा ॥ (पद्य ४३ से ४४)

जल बिना छाने हुए ग्रहण नहीं करूँगा । मीठा जल खारे जल में नहीं मिलाऊँगा । दूध, दही इत्यादि ढंककर रखूँगा । रांधना, पीसना और दलना इत्यादि कार्यों में शोधपूर्वक कार्य करूँगा । चूल्हा, ईंधन इत्यादि का यतनापूर्वक उपयोग करूँगा । अष्टमी चौदस का पालन करूँगा । जीवदया का पालन करूँगा । जिनवचनों का पालन करूँगा । यतनापूर्वक जीवन का

व्यवहार करूँगा । जो इस प्रकार करते हैं वे नर-नारी संसार से पार होते हैं । (पद्य ४५ से ४७)

पाक्षिक, चातुर्मासिक और संवत्सरी के दिन क्षमायाचना करूँगा । सुगुरु के पास में आलोयणा ग्रहण करूँगा । अन्त में पर्यन्ताराधना स्वीकार करूँगा । कवि कहता है कि इस प्रकार श्रावक विधि के अनुसार दिनचर्या का जो पालन करता है वह आठ भावों में मोक्ष सुख को प्राप्त करता है । यह रास **पद्मानन्दसूरि ने संवत् १३७१** में बनाया है । (पद्य ४८ से ४९)

जो इस रास को पढ़ेगा, सुनेगा, चिन्तन करेगा उसका शासनदेव सहयोग करेंगे । जब तक शशि, सूर्य, पृथ्वी, मेरु, नन्दनवन, विद्यमान हैं तब तक यह जिनशासन जय को प्राप्त हो । (पद्य ५०)

इस प्रकार इस रास में श्रावक की दिनचर्या किस प्रकार की होनी चाहिए उसका सविस्तर वर्णन किया गया है । यह वर्णन केवल बारह व्रतों का वर्णन ही नहीं है अपितु उसकी विधि के अनुसार आचरण करने का विधान है ।

जैसलमेर भण्डार के ग्रन्थ से प्रतिलिपि की गई है । यह कृति प्राचीनतम और रमणीय होने से यहाँ दी जा रही है :-

श्रावक-विधि रास

पायपउम पणमेवि, चउवीसहं तित्थंकरहं ।
श्रावकविधि संखेवि, भणइ **गुणाकरसूरि** गुरो ॥१॥
जहिं जिणमंदिर सार, अंतु तपोधनु पावियइं ।
श्रावग जिन सुविचारु, धणु तृणु जलु प्रचलो ॥२॥
न्यायवंत जहिं राउ, जण धण धन्नरउ माउलउ ।
सुधी परि ववसाउ, सूधइ थानकि तहिं वसउ ॥३॥
तम्मिहिं इहु परलोय, करमिहि इहलोउ पुणु ।
तह नर आउ न होउ, जसु तहं रवि ऊगमइ ॥४॥
तउ धम्मिउं उट्ठेइ, निसि चउघडियइ पाछिलए ।
जिणि नवकारु पढेइ, पहिलउ मंगलु मंगलहं ॥५॥

तक्खणि मेल्हवि खाट कवणु देवु अम्ह कवणु गुरो ।
अम्ह कवण कुल वाट कवण धम्म इह लोग पुणु ॥६॥
कइ घरि कइ पोसाल, लियउ सामाइकु पडिक्कमउ ।
पच्चक्खाणु प्रह कालि जं सक्कउ तं पच्चखउ ॥७॥

घात (घत्ता)

अरिरि संभरि अरिरि संभरि-दव्व सचित्त विगईय ।
तहं पाणइय वत्थ कुसुम, तंबोल वाहण सयल ।
सरीर विलेवणइ बंभचेर, दिसि न्हाण भोयणए ।
जो जाणइं चउद ए पय, नितु नितु करइ प्रमाणु ।
सो नरु निश्चइ पामिसी, देवहं तणउं विमाणु ॥८॥
सयरह ए सोवु करेवि, धोवति पहिरवि रुवडीअ ।
पूजहु ए भाउ धरेवि, घर देवालइ देउ जिणु ॥९॥
गंधिहिं ए धूविहि सार, अक्खिहिं पुष्फिहिं दीवइहिं ।
नेवजिए फलिफार, अट्ठ पगारीय पूज इम ॥१०॥
देवहं ए तणउं जु देउ, पूजहु जाइ वि जिण-भवणि ।
निम्मलु ए अकलु उभेउ, अजरु अमरु अरहंत पहु ॥११॥
पक्खिहिं ए मुक्खि तुरंतु, राग दोस सवे जो जिणए ।
रयणिहि ए त्रिहु सोहंतु, नाणिहिं दंसणि चारितिहिं ॥१२॥
मिल्हिउ ए चउहिं कसाय, पंच महव्वयभारु धरु ।
छव्विहिं ए जीवनिकाय, सदय मनु सत्त भय जो चयइ ॥१३॥
अट्ठिहिं ए ग(म?)दिहिं मुक्क, बंभगुपिति नव सीचवइ ।
आलसी ए खण वि न ढूकु दस दसविह धम्मु समुद्धरणु ॥१४॥
जाइवी ए पोसहसाल, एरिसु दु(सु?)हगुरु वांदियइ ।
माणुस ए ति किरि सियाल जाहन देउ न धम्मगुरु ॥१५॥
अक्खई ए सुहगुरु धम्मु, सावधाण धम्मिय सुणहु ।
धम्मह मूलुमरंभु जीवदया जं पालियउ ॥१६॥
झूटउ ए मं बोलेह, आलु दियंतहं आलु सउ ।
देखि वि ए कहइं भूलेहु, परधणु तृणु जिम मन्नियइं ॥१७॥

नियं तिय ए करि संतोसु पर तिय मन्नहु मा बहिण ।
परिहरि ए कूडउ सो सुकरि, परिमाणु परिग्गहहं ॥१८॥
जाणहु ए धम्मह भेउ, दाणु सीलु तपु भावणइ ।
देसण ए इम णिसुणेवि गुरु वंदिवि जं घरि गयउ ॥१९॥
धोवंतीए मिल्हि वि ठाइं, तव वसाउ समाचरइ ।
प्राइहिं ए पापहं चाइ, न्याइहिं धणु कणु मेलवए ॥२०॥

द्वितीय भाषा (घत्ता)

कहउं पनरस कहउं पनरस कम्म आदाण ।
इंगाली-वण-सगड भाड-फोड-जीविय-विवज्जउ ॥
दंत-लक्ख-रस-केस-विस-वणिज कज्जि म कया वि सज्जउ ॥
जंत-पीड-निल्लंछणइ-असईय पोस दव दाणु ।
सर-दहसोसु सो किम करइ हवइ सुमाणु सुजाणु ॥२१॥
लोहकार सुंनार ठठार भाडइ भुंजअन्नं कुंभार ।
अनुखीरोये जिन रचिकंति ते इंगाली कंमि लयंति ॥२२॥
कंद कउ तृण वण फल फुल्लइ विक्कहिं पन्न जि लब्भइ मुल्लइ।
खंडणु पीसणु दलणु जु कीजइ वणि वियाजु कंमु सोवि कहिजइ ॥२३॥
घडहिं सगड जे वाहइ वी कहिं, तीजइ कम्मदाणि ति ढूकहिं ।
खर वेसर महिं सुद्द बलिद्दा, भाडइ भारु वहावि सद्दा ॥२४॥
कूव सरोवर खाणि खणंति, अंनु विउड कंमु जि करंति ।
सिला कुट्ट कंमू हल खेडणु, फोडी कंमु जु भूमिहिं फोडणु ॥२५॥
दंत केस नह रोमइ चम्मइ, संख कवड्डइ जो सइ सुम्मइ ।
कसथूरी आगइ जु वि साहइ, सो नरु आवइ धमु विराहइ ॥२६॥
लाख गुली धाहडीय महूवा, टंकण मणसिल वणिज महूवा ।
तुवरी वज्जाल वस कूडा, हरियाला नहु होही रुवडा ॥२७॥
सुर वस आमिसु अनु माखणु, रसवणिज्जु किम करइ वियक्खणु ।
दुप्पय चउप्पय वणिजि जु लग्गउ, केसवणिज नेमु तिणि भग्गउ ॥२८॥
विस कंकसिया हल हथियारा, गंधक लोह जि जीवहं मारा ।
ऊखल अरहट घटं रट वणिज्ज, इम विसवणिजु करइ जु अणज्जु ॥२९॥

घाणी कोल्हू अरवहट वाहइ, अनुदलि एलउ जु कुवि करावइ ।
इणि परि कहियइ कम्मादाणु जंतपीड परिहरइ सुजाणु ॥३०॥
जोयण निग्घिणु अंक दियावइ, वीधइ नाकु मुक्क छेदावइ ।
गाइ कन्न गल कंवल कप्पइ, सो णिल्लंछणदोसिहिं लिप्पइ ॥३१॥
कुक्कुड कुक्कड मोर बिलाई, पोसंतहं नहु होइ भलाई ।
सूवा सारो अंनु परेवा, धम्मधुरंधर नहीं धरेवा ॥३२॥
देवु देविणु घणु जीउ म मारहु, सरदह नइ जलु सोसु निवारहु ।
पनरह कम्मादाण विचारु, जाणिवि करि सूधउ ववहारु ॥३३॥
धारु धमइं रस अंजण जोवइ, जूइ रमइ इम दविणु न होवइ ।
कुवसणि इक्कु वि सुउ न गंमीजइ, तिय आगति चहुं भागिहिं कीजइ ॥३४॥
पहिलउ भागु निधिहिं संवारइ वीजउ पुणु वचसा उवधारइ ।
तीजउ धम्म भोगु निरदोसु चउथइ दुपय चउप्पय पोसु ॥३५॥

तृतीय भाषा (घत्ता)

निसुणि धम्मिय निसुणि धम्मिय, कूड तुल माण ।
क्रय कूडो परिहरहु कूड लेख तहं साखि कूडिय
दुत्थिय दुहिय सवासणिय मित्त दोह न हु वातरुवडिया ।
देवदव्वु जो गुरुदविणु, भक्खइ भवु अगणंतु ।
विणु सम्मत्तिण सो भमइ, इम संसारु अणंतु ॥३६॥

जिम आहारहं तणीय सुद्धि, मुनि चारितु लीणउं ।
हाटहं हूतउ घरि पहूतु जउ भोजन वारहं ।
पूजा बीजी वार करइ, वांसिउ नवि वारहं ॥३७॥

दीण गिलाणहं पाहुणहं, संभाल करावइ ।
सइ हत्थिहिं सूधउ, आहारु मुणिवर विहरावइ ॥

उसह वेसह वत्थ पत्त, वसही सयणासण ।
अवरु वि जं इहं तित्थ, तं देइ सुवासणु ॥३८॥

जइ तहिं गइ न हुंति साहु, तउ दिवस आलावइ ।
मनि भावइ आवइ सुपत्तु, तउ भल्लउ होवइ ॥

कवणु कियउ पच्चक्खाणु, आजु मनि इम संभारइ ।
वइठउ वाइं सचित्त चाइं, आहारु आहारइ ॥३९॥
करि भोयणु निद्दहविहूणु खणु इकु वि समत्तउ ।
पाछिलइ पहरि पुण वि, पोसालह गम्मइ ॥
पढइ गुणइं वाचइ सुणेइ, पुच्छेइ पढावइ ।
अह जु वियालीय करणहारु, सो णिय घरि आवइ ॥४०॥
दिवसहं अट्ठम भाग सो सि जीमेइ सुजाणू ।
पाछिलए दो घडिय दिवसि चरिमं पचखाणू ॥
संघ(ध?)हं तीजी करिवि, सामाइकु लीजइ ।
तउ देवसियं पडिकमेवि, सब्भाउ करिजइ ॥४१॥
रत्तिहिं वीतइ पढम पहरि, नवकारु भणेविणु ।
अरिहय सिद्धि(द्ध?) सुसाहु धम्म सरणइं पइसेविणु ॥४२॥

चतुर्थ भाषा (घत्ता)

अंति निद्दह अंति निद्दह चित्ति चिंतेइ ।
सेतुंज्जि उज्जिलि चडिवि जिणहं, पूय कइंयहं कराविसु ।
साहमिय गउरउ करि सुकइय, कइ पुत्थउ लिहाविहातिसु ॥
छंडवि धंधउ इह धरहं, कइ हउं संजमु लेसु ।
समरि सिलग्गउ कइय हउं फेडिसु कम्मकिलेसु ॥४३॥
वंदिवि दिवसु सूरि वादीययए (?)
संभलहु भाविय हु सीख तुम्ह दीजए ।
गलहु उम्हालए तिन्नि वारा जलं,
लेविणु गलणु गलण तुम्हिअइ नीसलं ॥४४॥
सेसकाले वि बे वार जलु गालहो,
मीठ-जलि खार-जलि जीव मा मेलहो ।
राखउ सूकतउ तुम्हि संखारउ
वस्त्रहं धोवणु गलिय जलि कारहो ॥४५॥
दुद्ध दहि तिल्लु घिउ तक्क ढंकि वि धरहु ।
मक्खि-घाए सुहमा जीव तहिं पडि मरहु ।

सोधिवि धुंसु रंधंति पीसहिं दलहिं ।
पउंजि वे वारइ चुल्हि घर हू खलइं ॥४६॥
जाणवि जीउ जे ईंधणं बालहिं ।
अट्ठमि चउदसिय-मुह ते पालहिं ॥
जीवदया सारु जिण वयणु जे संभरइं ।
जयण पालंति नर नारि ते भव तरहिं ॥४७॥
पक्ख चउमास संवच्छरे खामणा ।
सुगुरुपासंमि जिय करिय आलोयणा ॥
करइ जो आउ-पज्जंत आराहणा ।
तासु परलोइ गइ होइ अइ-सोहणा ॥४८॥
एम जो पालए पवर सावय-विही ।
अट्ठभव माहि सिवसोक्ख सो पाविही ॥
[1]**रासु पदमाणंदसूरि**-सीसिहिं इहो ।
तेर इगहत्तरइ रयउ ल(?) संगहो ॥४९॥
जो पढइ जो सुणइ जो रमइ जिणहरो ।
सासणदेवि तउ तासु सामि धुकरो ।
जाम ससि सूरु महि मेरु नंदणवणं ।
ता जयउ तिहुयणे एहु जिणसासणं ॥५०॥

॥ इति श्रावकविधि रासः समाप्त मिति भद्रं ॥छ॥

—x—

---

१. रासकी प्रथम गाथामें ''भणइ गुणाकरसूरि गुरो'' ऐसा पाठ है । ४९वीं गाथामें ''रासु पदमाणंदसूरि-सीसिहिं इहो'' ऐसा पाठ है । दोनोंका संकलन किये जाने पर पदमाणंदसूरि के शिष्य गुणाकरसूरि द्वारा रास रचित हो ऐसा प्रतीत होता है। सम्पादक महोदयने पद्मानन्दसूरि की रचना इसे बताई है। विज्ञ लोग निर्णय करें।

अपभ्रंश की यह रचना काफी सम्मार्जन की अपेक्षा रखती है । अपभ्रंश के अभ्यासु जन सम्मार्जन व शब्दकोश करेंगे ऐसी आशा है । **-शी.**